सत्यमेव जयते

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, रत्नागिरी

प्रेरणा

हिन्दी कवियों का जीवन चरित्र

संयोजक

बैंक ऑफ़ इंडिया

रिश्तों की जमापूँजी

रत्नागिरी अंचल

अंक 12 वां
नवंबर, 2024

अध्यक्षीय मनोगत

साथियों

हमारे नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा ई पत्रिका **प्रेरणा** का विविध विषयों को लेकर प्रकाशन समय पर किया जा रहा है। इसके लिए मैं संपादक मंडल को साधुवाद देना चाहता हूं। मैंने पिछले कुछ अंकों का अवलोकन किया उसमें भारत के विभिन्न क्षेत्र में महारत प्राप्त व्यक्तित्व का चरित्र चित्रण पाठकों के सम्मुख रखा गया। मुझे खुशी है कि हमारे देश के प्रथम नागरिक महामहिम राष्ट्रपतियों की जानकारी, संतो की भूमि महाराष्ट्र, भारत की मशहूर कवयित्रियां, संविधान में राजभाषा का प्रावधान,भारत के हिंदी संत,जानेमाने गज़लकार/शायरों,भारत की नदियां तथा भारत के प्राचीन मंदिर का परिचय आदि अलग-अलग विषयों पर अबतक 11 विशेषांक का प्रकाशन किया गया है।

हम सभी जानते है कि हमारे जीवन में ग्रंथ साहित्य, संगीत का जितना महत्व है उतना ही काव्य रस का भी है। कवियों ने आजादी के पूर्व आजादी के बाद भी अपना अमूल्य ऐसा योगदान दिया है। प्रेरणा के माध्यम से कुछ कवियों के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करवाने का प्रयास किया हैं।

हमें आशा है कि **प्रेरणा** ई पत्रिका की श्रृंखला में यह प्रस्तुति आपको जरूर पसंद आएगी।

शुभकामनाओं सहित, धन्यवाद ।

दि. 28 नवंबर, 2024

नरेंद्र देवरे

(नरेंद्र रघुनाथ देवरे)
अध्यक्ष एवं उप महाप्रबंधक

हिन्दी कविता की परम्परा बहुत लम्बी है। शिव सिंह सेंगर ने हिन्दी साहित्य के आदि काल के प्रथम कवि के रूप में 'पुष्य' या 'पुण्ड' का नाम प्रस्तावित किया है। कुछ विद्वान सरहपा को हिन्दी का पहला कवि मानते हैं। सरहपाद और उनके समवर्ती व परवर्ती सिद्धों ने दोहों और पदों के रूप में अपनी स्फुट रचनाएं प्रस्तुत कीं। रासोकाल तक आते-आते प्राचीन हिन्दी का रूप स्थिर हो चुका था। अपभ्रंश और शुरुआती हिन्दी परस्पर घुली-मिली दिखाई देती हैं। धीरे-धीरे हिन्दी में परिष्कार होता रहा और अपभ्रंश भाषा के पटल से लुप्त हो गई।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना
अमीर ख़ुसरो
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अशोक चक्रधर
अटल बिहारी वाजपेयी
उदय प्रकाश
कबीर
काका हाथरसी
केदारनाथ अगरवाल
केदारनाथ सिंह
कुमार विश्वास
कुँवर बेचैन
कुँवर नारायण
गोपाल सिंह नेपाली
गोपालदास नीरज
चंदबरदाई
जयशंकर प्रसाद
जगन्नाथदास रत्नाकर
तुलसीदास
धर्मवीर भारती
नरेश मेहता
नागार्जुन
प्रसून जोशी
बालकृष्ण राव
बालस्वरूप राही
भवानी प्रसाद मिश्र
सोम ठाकुर
सोहन लाल द्विवेदी
भारत भूषण
महादेवी वर्मा
मैथिलीशरण गुप्त
माखनलाल चतुर्वेदी
मीरा बाई
मोहन राणा
रवीन्द्र प्रभात
रामभद्राचार्य
रामधारी सिंह 'दिनकर'
राम रतन भटनागर
लछिराम
लक्ष्मी शंकर बाजपाई
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
वृन्द
शंकरलाल द्विवेदी
शिवदीन राम जोशी
शिवमंगल सिंह 'सुमन'
शैल चतुर्वेदी
श्याम नारायण पाण्डेय
सच्चिदानंद वात्स्यायन
सावित्रि नौटियाल काला 'सवि'
सियारामशरण गुप्त
सुभद्रा कुमारी चौहान
सुमित्रानंदन पंत
सूरदास
सूर्यकुमार पाण्डेय
हरिवंशराय बच्चन

स्रोत एवं संकलन—विकीपीडिया

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(9 सितंबर 1850-6 जनवरी 1885)

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिन्दी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिन्दी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किन्तु नियमित रूप से खड़ीबोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिन्दी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया।उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, सम्पादक, निबन्धकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोये। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। ब्रिटिश राज की शोषक प्रकृति का चित्रण करने वाले उनके लेखन के लिए उन्हें युग चारण माना जाता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म ९ सितम्बर, १८५० को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास'उपनाम से कविता लिखा करते थे। १८५७ में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु ७ वर्ष की होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज-भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला।[4] शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं। उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान॥

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी ऋणी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप १८८५ में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

रचनाएं

- भक्तसर्वस्व (१८७०),
- प्रेममालिका (१८७१),
- कार्तिक स्नान
- वैशाख महात्म्य
- प्रेम सरोवर
- प्रेमाश्रुवर्षण
- जैन कुतूहल
- प्रेम सतसई श्रृंगार
- प्रेम माधुरी (१८७५),
- बन्दर सभा (हास्य व्यंग्य)
- बकरी विलाप (हास्य व्यंग्य)
- विजय वल्लरी
- विजयिनी विजय वैजयंती
- जातीय संगीत
- प्रबोधिनी
- प्रातः स्मरण

अमीर ख़ुसरो

अबुल हसन यमीनुद्दीन अमीर ख़ुसरो (1253-1325) चौदहवीं सदी के लगभग दिल्ली के निकट रहने वाले एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे। [1] उनका परिवार कई पीढ़ियों से राजदरबार से सम्बंधित था। स्वयं अमीर खुसरो ने 8 सुल्तानों का शासन देखा था। अमीर खुसरो प्रथम मुस्लिम कवि थे जिन्होंने हिंदी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिंदी, हिन्दवी और फारसी में एक साथ लिखा। उन्हे खड़ी बोली के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। वे अपनी पहेलियों और मुकरियों के लिए जाने जाते हैं। सबसे पहले उन्हीं ने अपनी भाषा के लिए हिन्दवी का उल्लेख किया था। वे फारसी के कवि भी थे। उनको दिल्ली सल्तनत का आश्रय मिला हुआ था। उनके ग्रंथो की सूची लम्बी है। साथ ही इनका इतिहास स्रोत रूप में महत्त्व है। अमीर खुसरो को तोता-ए-हिंद कहा जाता है

मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफुद्दीन के पुत्र अमीर खुसरो का जन्म सन् 1253ईस्वी (६५२ हि.) में एटा जिले उत्तर प्रदेश के पटियाली नामक कस्बे में हुआ था। लाचन जाति के तुर्क चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (१२६६ (1266)-१२८६(1286) ई0) के राज्यकाल में ''शरणार्थी के रूप में भारत में आ बसे थे। खुसरो की माँ बलबनके युद्धमंत्री इमादुतुल मुल्क की पुत्री तथा एक भारतीय मुसलमान महिला थी। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया और २० वर्ष के होते होते वे कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कोई कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की खुसरो ने कभी अवहेलना नहीं की। खुसरो ने अपना सारा जीवन राज्याश्रय में ही बिताया। राजदरबार में रहते हुए भी खुसरो हमेशा कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे। साहित्य के अतिरिक्त संगीत के क्षेत्र में भी खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने भारतीय और ईरानी रागों का सुन्दर मिश्रण किया और एक नवीन राग शैली इमान, जिल्फ़, साजगरी आदि को जन्म दिया। भारतीय गायन में क़व्वालीऔर सितार को इन्हीं की देन माना जाता है। इन्होंने गीत के तर्ज पर फ़ारसी में और अरबी ग़जल के शब्दों को मिलाकर कई पहेलियाँ और दोहे भी लिखे हैं।

इनके तीन पुत्रों में अबुलहसन (अमीर खुसरो) सबसे बड़े थे - ४ बरस की उम्र में वे दिल्ली लाए गए। ८ बरस की उम्र में वे प्रसिद्ध सूफ़ी हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य बने। १६-१७ साल की उम्र में वे अमीरों के घर शायरी पढ़ने लगे थे। एक बार दिल्ली के एक मुशायरे में बलबन के भतीजे सुल्तान मुहम्मद को ख़ुसरो की शायरी बहुत पसंद आई और वो इन्हें अपने साथ मुल्तान (आधुनिक पाकिस्तानी पंजाब) ले गया। सुल्तान मुहम्मद ख़ुद भी एक अच्छा शायर था - उसने खुसरो को एक अच्छा ओहदा दिया। *मसनवी* लिखवाई जिसमें २० हज़ार शेर थे - ध्यान रहे कि इसी समय मध्यतुर्की में शायद दुनिया के आजतक के सबसे श्रेष्ठ शायर मौलाना रूमी भी एक मसनवी लिख रहे थे या लिख चुके थे। ५ साल तक मुल्तान में उनका जिंदगी बहुत ऐशो आराम से गुज़री। इसी समय मंगोलों का एक ख़ेमा पंजाब पर आक्रमण कर रहा था। इनको क़ैद कर हेरात ले जाया गया - मंगोलों ने सुल्तान मुहम्मद का सर कलम कर दिया था। दो साल के बाद इनकी सैनिक आकांक्षा की कमी को देखकर और शायरी का अंदाज़ देखकर छोड़ दिया गया। फिर यो पटियाली पहुँचे और फिर दिल्ली आए। बलबन को सारा क़िस्सा सुनाया - बलबन भी बीमार पड़ गया और फिर मर गया। फिर कैकुबाद के दरबार में भी ये रहे - वो भी इनकी शायरी से बहुत प्रसन्न रहा और इन्हे *मुलुकशुअरा* (राष्ट्रकवि) घोषित किया। जलालुद्दीन खिलजी इसी वक़्त दिल्ली पर आक्रमण कर सत्ता पर काबिज़ हुआ। उसने भी इनको स्थाई स्थान दिया। जब खिलजी के भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने ७० वर्षीय जलालुद्दीन का क़त्ल कर सत्ता हथियाई तो भी वो अमीर खुसरो को दरबार में रखा। चित्तौड़ पर चढ़ाई के समय भी अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी को मना किया लेकिन वो नहीं माना। इसके बाद मलिक काफ़ूर ने अलाउद्दीन खिलजी से सत्ता हथियाई और मुबारक शाह ने मलिक काफ़ूर से।

दोहा

गोरी सोये सेज पर, मुख पर डाले केश
चल खुसरू घर अपने, रैन भई चहूँ देश

सेज वो सूनी देख के रोवुँ मैं दिन रैन,
पिया पिया मैं करत हूँ पहरों, पल भर सुख ना चैन।

रैनी चढ़ी रसूल की सो रंग मौला के हाथ,
जिसके कपरे रंग दिए सो धन धन वाके भाग।

खुसरो बाजी प्रेम की मैं खेलूँ पी के संग,
जीत गयी तो पिया मोरे हारी पी के संग।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा (26 मार्च 1907 — 11 सितम्बर 1987) हिन्दी भाषा की कवयित्री थीं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक मानी जाती हैं।[1] आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें *आधुनिक मीरा* के नाम से भी जाना जाता है।[2] कवि निराला ने उन्हें "हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती" भी कहा है। महादेवी ने स्वतन्त्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की।[3] न केवल उनका काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि *दीपशिखा* में वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।

उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल ब्रजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बांग्ला के कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अन्तिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परन्तु उन्होंने अविवाहित की भाँति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ[4] कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भाँति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं। वे पशु पक्षी प्रेमी थी गाय उनको अति प्रिय थी। वर्ष 2007 उनका जन्म शताब्दी के रूप में मनाया गया। 27 अप्रैल 1982 को भारतीय साहित्य में अतुलनीय योगदान के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से इन्हें सम्मानित किया गया था। गूगल ने इस दिवस की याद में वर्ष 2018 में गूगल डूडल के माध्यम से मनाया ।

महादेवी जी की शिक्षा इन्दौर में मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई साथ ही संस्कृत, अंग्रेज़ी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। बीच में विवाह जैसी बाधा पड़ जाने के कारण कुछ दिन शिक्षा स्थगित रही। विवाहोपरान्त महादेवी जी ने 1919 में क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश लिया और कॉलेज के छात्रावास में रहने लगीं। 1921 में महादेवी जी ने आठवीं कक्षा में प्रान्त भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया। यहीं पर उन्होंने अपने काव्य जीवन की शुरुआत की। वे सात वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगी थीं और 1925 तक जब उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की, वे एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विभिन्न पत्र -पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। कालेज में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गई। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी जी का हाथ पकड़ कर सखियों के बीच में ले जाती और कहतीं "सुनो, ये कविता भी लिखती हैं"। 1932 में जब उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम°ए° पास किया तब तक उनके दो कविता संग्रह *नीहार* तथा *रश्मि* प्रकाशित हो चुके थे।

कविता संग्रह

१. नीहार (१९३०)
२. रश्मि (१९३२)
३. नीरजा (१९३४)
४. सांध्यगीत (१९३६)
५. दीपशिखा (१९४२)
६. सप्तपर्णा(अनूदित-१९५९)
७. प्रथमआयाम (१९७४)
८. अग्निरेखा (१९९०)

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य

रेखाचित्र: अतीत के चलचित्र (१९४१) और स्मृति की रेखाएं (१९४३),

संस्मरण: पथ के साथी (१९५६) और मेरा परिवार (१९७२) और संस्मरण (१९८३)

चुने हुए भाषणों का संकलन: संभाषण (१९७४)

निबंध: श्रृंखला की कड़ियाँ (१९४२), विवेचनात्मक गद्य (१९४२), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (१९६२), संकल्पिता (१९६९)

ललित निबंध: क्षणदा (१९५६)

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि **मैथिलीशरण गुप्त** (३ अगस्त १८८६ – १२ दिसम्बर १९६४) हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वे खड़ी बोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि हैं।[1] उन्हें साहित्य जगत में 'दद्दा' नाम से सम्बोधित किया जाता था। उनकी कृति भारत -भारती (1912) भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के समय में काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई थी और इसी कारण महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की पदवी भी दी थी। उनकी जयन्ती ३ अगस्त को हर वर्ष 'कवि दिवस' के रूप में मनाया जाता है। सन १९५४ में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की प्रेरणा से गुप्त जी ने खड़ी बोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और अपनी कविता के द्वारा खड़ी बोली को एक काव्य-भाषा के रूप में निर्मित करने में अथक प्रयास किया। इस तरह ब्रजभाषा जैसी समृद्ध काव्य-भाषा को छोड़कर समय और संदर्भों के अनुकूल होने के कारण नये कवियों ने इसे ही अपनी काव्य-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। हिन्दी कविता के इतिहास में यह गुप्त जी का सबसे बड़ा योगदान है। घासीराम व्यास जी उनके मित्र थे। पवित्रता, नैतिकता और परंपरागत मानवीय सम्बन्धों की रक्षा गुप्त जी के काव्य के प्रथम गुण हैं, जो 'पंचवटी' से लेकर 'जयद्रथ वध', 'यशोधरा' और 'साकेत' तक में प्रतिष्ठित एवं प्रतिफलित हुए हैं। 'साकेत' उनकी रचना का सर्वोच्च शिखर है।

प्रथम काव्य संग्रह "रंग में भंग" तथा बाद में "जयद्रथ वध" प्रकाशित हुई। उन्होंने बंगाली के काव्य ग्रन्थ "मेघनाथ वध", "ब्रजांगना" का अनुवाद भी किया। सन् 1912 - 1913 ई. में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत "भारत भारती" का प्रकाशन किया। उनकी लोकप्रियता सर्वत्र फैल गई। संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ "स्वप्नवासवदत्ता" का अनुवाद प्रकाशित कराया। सन् १९१६-१७ ई. में महाकाव्य 'साकेत' की रचना आरम्भ की। उर्मिला के प्रति उपेक्षा भाव इस ग्रन्थ में दूर किये। स्वतः प्रेस की स्थापना कर अपनी पुस्तकें छापना शुरु किया। साकेत तथा पंचवटी आदि अन्य ग्रन्थ सन् १९३१ में पूर्ण किये। इसी समय वे राष्ट्रपिता गांधी जी के निकट सम्पर्क में आये। 'यशोधरा' सन् १९३२ ई. में लिखी। गांधी जी ने उन्हें "राष्टकवि" की संज्ञा प्रदान की। 16 अप्रैल 1941 को वे व्यक्तिगत सत्याग्रह में भाग लेने के कारण गिरफ्तार कर लिए गए। पहले उन्हें झाँसी और फिर आगरा जेल ले जाया गया। आरोप सिद्ध न होने के कारण उन्हें सात महीने बाद छोड़ दिया गया। सन् 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित किया गया। १९५२-१९६४ तक राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुये। सन् १९५३ ई. में भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण से सम्मानित किया। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद ने सन् १९६२ ई. में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा डी.लिट. से सम्मानित किये गये। वे वहाँ मानद प्रोफेसर के रूप में नियुक्त भी हुए। १९५४ में साहित्य एवं शिक्षा क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। चिरगाँव में उन्होंने १९११ में *साहित्य सदन* नाम से स्वयं की प्रैस शुरू की और झांसी में १९५४-५५ में **मानस-मुद्रण** की स्थापना की।

कृतियाँ

- **महाकाव्य**- **साकेत 1931**, **यशोधरा 1932**

खण्डकाव्य- **जयद्रथ वध 1910**, **भारत-भारती 1912**, **पंचवटी 1925**, **द्वापर 1936**, **सिद्धराज**, **नहुष**, अंजलि और अर्घ्य, अजित, अर्जन और विसर्जन, काबा और कर्बला, **किसान 1917**, कुणाल गीत, गुरु तेग बहादुर, **गुरुकुल 1929**, **जय भारत 1952**, युद्ध, झंकार 1929 , पृथ्वीपुत्र, वक संहार **शकुंतला**, विश्व वेदना, राजा प्रजा, **विष्णुप्रिया**, **उर्मिला**, लीला[ग], प्रदक्षिणा, दिवोदास भूमि-भाग

नाटक - **रंग में भंग 1909**, **राजा-प्रजा**, वन वैभव विकट भट , विरहिणी , वैतालिक, शक्ति, **सैरन्ध्री** , स्वदेश संगीत, **हिड़िम्बा** , हिन्दू, चंद्रहास

- **फुटकर रचनाएँ**- केशों की कथा, स्वर्गसहोदर, ये दोनों मंगल घट (मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखी पुस्तक) में संग्रहीत हैं।
- अनूदित (मधुप के नाम से)-
- **संस्कृत-** स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिमा, अभिषेक, अविमारक (भास) (गुप्त जी के नाटक देखें), रत्नावली (हर्षवर्धन)
- **बंगाली-** मेघनाथ वध, विहरिणी वज्रांगना (माइकल मधुसूदन दत्त), पलासी का युद्ध (नवीन चंद्र सेन)
- **फारसी-** रुबाइयात उमर खय्याम (उमर खय्याम)
- कविताओं का संग्रह - उच्छवास
- पत्रों का संग्रह - पत्रावली

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल की महिषादल रियासत (जिला मेदिनीपुर) में माघ शुक्ल ११, संवत् १९५५, तदनुसार २१ फ़रवरी, सन् १८९९ में हुआ था।[1] वसंत पंचमी पर उनका जन्मदिन मनाने की परंपरा १९३० में प्रारंभ हुई।[1] उनका जन्म मंगलवार को हुआ था। जन्म-कुण्डली बनाने वाले पंडित के कहने से उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। उनके पिता पंडित रामसहाय तिवारी उन्नाव (बैसवाड़ा) के रहने वाले थे और महिषादल में सिपाही की नौकरी करते थे। वे मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढ़ाकोला नामक गाँव के निवासी थे।

निराला की शिक्षा हाई स्कूल तक हुई। बाद में हिन्दी संस्कृत और बाङ्ला का स्वतंत्र अध्ययन किया। पिता की छोटी-सी नौकरी की असुविधाओं और मान-अपमान का परिचय निराला को आरम्भ में ही प्राप्त हुआ। उन्होंने दलित-शोषित किसान के साथ हमदर्दी का संस्कार अपने अबोध मन से ही अर्जित किया। तीन वर्ष की अवस्था में माता का और बीस वर्ष का होते-होते पिता का देहांत हो गया। अपने बच्चों के अलावा संयुक्त परिवार का भी बोझ निराला पर पड़ा। पहले महायुद्ध के बाद जो महामारी फैली उसमें न सिर्फ पत्नी मनोहरा देवी का, बल्कि चाचा, भाई और भाभी का भी देहांत हो गया। 1918 में स्पेनिश फ्लू इन्फ्लूएंजा के प्रकोप में निराला ने अपनी पत्नी और बेटी सहित अपने परिवार के आधे लोगों को खो दिया। शेष कुनबे का बोझ उठाने में महिषादल की नौकरी अपर्याप्त थी। इसके बाद का उनका सारा जीवन आर्थिक-संघर्ष में बीता।

निराला के जीवन की सबसे विशेष बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने सिद्धांत त्यागकर समझौते का रास्ता नहीं अपनाया, संघर्ष का साहस नहीं गंवाया। जीवन का उत्तरार्द्ध इलाहाबाद में बीता। वहीं दारागंज मुहल्ले में स्थित रायसाहब की विशाल कोठी के ठीक पीछे बने एक कमरे में १५ अक्टूबर १९६१ को उन्होंने अपनी इहलीला समाप्त की।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की पहली नियुक्ति महिषादल राज्य में ही हुई। उन्होंने १९१८ से १९२२ तक यह नौकरी की। उसके बाद संपादन, स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य की ओर प्रवृत्त हुए। १९२२ से १९२३ के दौरान कोलकाता से प्रकाशित 'समन्वय' का संपादन किया, १९२३ के अगस्त से *मतवाला* के संपादक मंडल में कार्य किया। इसके बाद लखनऊ में गंगा पुस्तक माला कार्यालय में उनकी नियुक्ति हुई जहाँ वे संस्था की मासिक पत्रिका *सुधा* से १९३५ के मध्य तक संबद्ध रहे। १९३५ से १९४० तक का कुछ समय उन्होंने लखनऊ में भी बिताया। इसके बाद १९४२ से मृत्यु पर्यन्त इलाहाबाद में रह कर स्वतंत्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। उनकी पहली कविता **'जन्मभूमि'** प्रभा नामक मासिक पत्र में जून १९२० में, पहला कविता संग्रह १९२३ में अनामिका नाम से, तथा पहला निबंध **'बंग भाषा का उच्चारण'** अक्टूबर १९२० में मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित हुआ।

अपने समकालीन अन्य कवियों से अलग उन्होंने कविता में कल्पना का सहारा बहुत कम लिया है और यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया है। वे हिन्दी में मुक्तछन्द के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। १९३० में प्रकाशित अपने काव्य संग्रह परिमल की भूमिका में उन्होंने लिखा है-

लेखन कार्य

निराला ने १९२० ई॰ के आसपास से लेखन कार्य आरंभ किया।उनकी पहली रचना 'जन्मभूमि' पर लिखा गया एक गीत था।[7] लंबे समय तक निराला की प्रथम रचना के रूप में प्रसिद्ध 'जूही की कली' शीर्षक कविता, जिसका रचनाकाल निराला ने स्वयं १९१६ ई॰ बतलाया था, वस्तुतः १९२१ ई॰ के आसपास लिखी गयी थी तथा १९२२ ई॰ में पहली बार प्रकाशित हुई थी। कविता के अतिरिक्त कथासाहित्य तथा गद्य की अन्य विधाओं में भी निराला ने प्रभूत मात्रा में लिखा है

काव्यसंग्रह

अनामिका (१९२३)परिमल (१९३०) गीतिका (१९३६)
अनामिका (द्वितीय), (१९३९), (इसी संग्रह में सरोज स्मृति और राम की शक्तिपूजा जैसी प्रसिद्ध कविताओं का संकलन है।
तुलसीदास (१९३९), कुकुरमुत्ता (१९४२), अणिमा (१९४३),
बेला (१९४६),नये पत्ते (१९४६), अर्चना (१९५०),आराधना (१९५३),
गीत कुंज (१९५४), सांध्य काकली, अपरा (संचयन)

उपन्यास

अप्सरा (१९३१) अलका (१९३३)
प्रभावती (१९३६) निरुपमा (१९३६) कुल्ली भाट (१९३८-३९) बिल्लेसुर बकरिहा (१९४२)चोटी की पकड़ (१९४६) काले कारनामे (१९५०)
{अपूर्ण} चमेली (अपूर्ण) इन्दुलेखा तकनीकी

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी (4 अप्रैल 1889-30 जनवरी 1968) भारत के ख्यातिप्राप्त कवि, लेखक और पत्रकार थे जिनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं। सरल भाषा और भावओं के वे अनूठे प्र थे। प्रभा और कर्मवीर जैसे प्रतिष्ठत पत्रों के संपादक के में उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ जोरदार प्रसाद और नई पीढ़ी का किया कि वह गुलामी की जंज़ीरों को तोड़ कर बाहर आए। इसके लिये उन्हें अनेक बार ब्रिटिश साम्राज्य का कोपभाजन बनना पड़ा। वे सच्चे देशप्रेमी थे और १९२१-२२ के असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए जेल भी गए। उनकी कविताओं में देशप्रेम के साथ-साथ प्रकृति और प्रेम का भी चित्रण हुआ है, इसलिए वे सच्चे अर्थों में युग-चारण माने जाते हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी का तत्कालीन राष्ट्रीय परिदृश्य और घटनाचक्र ऐसा था जब लोकमान्य तिलक का उद्घोष- 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' बलिपंथियों का प्रेरणास्रोत बन चुका था। दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र का सफल प्रयोग कर कर्मवीर मोहनदास करमचंद गाँधी का राष्ट्रीय परिदृश्य के केंद्र में आगमन हो चुका था। आर्थिक स्वतंत्रता के लिए स्वदेशी का मार्ग चुना गया था, सामाजिक सुधार के अभियान गतिशील थे और राजनीतिक चेतना स्वतंत्रता की चाह के रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता बन गई थी। ऐसे समय में माधवराव सप्रे के 'हिंदी केसरी' ने सन १९०८ में 'राष्ट्रीय आंदोलन और बहिष्कार' विषय पर निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया। खंडवा के युवा अध्यापक माखनलाल चतुर्वेदी का निबंध प्रथम चुना गया। अप्रैल १९१३ में खंडवा के हिंदी सेवी कालूराम गंगराड़े ने मासिक पत्रिका 'प्रभा' का प्रकाशन आरंभ किया, जिसके संपादन का दायित्व माखनलालजी को सौंपा गया। सितंबर १९१३ में उन्होंने अध्यापक की नौकरी छोड़ दी और पूरी तरह पत्रकारिता, साहित्य और राष्ट्रीय आंदोलन के लिए समर्पित हो गए। इसी वर्ष कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' का संपादन-प्रकाशन आरंभ किया। १९१६ के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन के दौरान माखनलालजी ने विद्यार्थीजी के साथ मैथिलीशरण गुप्त और महात्मा गाँधी से मुलाकात की। महात्मा गाँधी द्वारा आहूत सन १९२० के 'असहयोग आंदोलन' में महाकोशल अंचल से पहली गिरफ्तारी देने वाले माखनलालजी ही थे। सन १९३० के सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी उन्हें गिरफ्तारी देने का प्रथम सम्मान मिला। उनके महान कृतित्व के तीन आयाम हैं : एक, पत्रकारिता- 'प्रभा', 'कर्मवीर' और 'प्रताप' का संपादन। दो- माखनलालजी की कविताएँ, निबंध, नाटक और कहानी। तीन- माखनलालजी के अभिभाषण/ व्याख्यान।

पुरस्कार व सम्मान

१९४३ में उस समय का हिन्दी साहित्य का सबसे बड़ा 'देव पुरस्कार' माखनलालजी को 'हिम किरीटिनी' पर दिया गया था। १९५४ में साहित्य अकादमी पुरस्कार की स्थापना होने पर हिंदी साहित्य के लिए प्रथम पुरस्कार दादा को 'हिमतरंगिनी' के लिए प्रदान किया गया। 'पुष्प की अभिलाषा' और 'अमर राष्ट्र' जैसी ओजस्वी रचनाओं के रचयिता इस महाकवि के कृतित्व को सागर विश्वविद्यालय ने १९५९ में डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित किया। १९६३ में भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। १० सितंबर १९६७ को राजभाषा हिंदी पर आघात करने वाले राजभाषा संविधान संशोधन विधेयक के विरोध में माखनलालजी ने यह अलंकरण लौटा दिया। १६-१७ जनवरी १९६५ को मध्यप्रदेश शासन की ओर से खंडवा में 'एक भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी के नागरिक सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। तत्कालीन राज्यपाल श्री हरि विनायक पाटसकर और मुख्यमंत्री पं॰ द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा हिंदी के अग्रगण्य साहित्यकार-पत्रकार इस गरिमामय समारोह में उपस्थित थे। भोपाल का माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय उन्हीं के नाम पर स्थापित किया गया है। उनके काव्य संग्रह 'हिमतरंगिणी' के लिये उन्हें १९५५ में हिंदी के 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

कृतियाँ

हिमकिरीटिनी, हिम तरंगिणी, युग चारण, समर्पण, मरण ज्वार, माता, वेणु लो गूंजे धरा, बीजुरी काजल आँज रही आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं।

कृष्णार्जुन युद्ध, साहित्य के देवता, समय के पाँव, अमीर इरादे :गरीब इरादे आदि इनके प्रसिद्ध गद्यात्मक कृतियाँ हैं।

निबंध संग्रह

- **साहित्य देवता।**
- **अमीर इरादे गरीब इरादे(1960ई०)**

शंकरलाल द्विवेदी

शंकरलाल द्विवेदी (21 जुलाई 1941 - 27 जुलाई 1981), हिन्दी एवं ब्रजभाषा साहित्य के मूर्धन्य कवि व साहित्यकार थे। काव्य-मंचों एवं साथी कवियों के मध्य वे **शंकर द्विवेदी** उपाख्य से प्रचलित व प्रतिष्ठित रहे। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी श्री द्विवेदी, एक उत्कृष्ट कविर्मनीषी होने के साथ-साथ उच्च कोटि के शिक्षाविद भी थे। समकालीन कवियों के मध्य उन्हें कवि सम्मेलनों में ख़ासी लोकप्रियता प्राप्त थी। अपनी ओजस्वी काव्य-प्रस्तुतियों के कारण कवि सम्मेलनों के श्रोता-वर्ग में भी वे अत्यन्त लोकप्रिय थे। श्री द्विवेदी **आग** और **राग** दोनों स्वरों के सर्जक रहे हैं। वीर रस में काव्य-दक्ष श्री द्विवेदी को शृंगार रस में भी दक्षता हासिल थी। संयोग तथा वियोग दोनों ही श्रृंगारिक पक्षों पर उनकी लेखनी समानाधिकृत रूप से समृद्ध थी। उनका गीत-माधुर्य बरबस ही श्रोताओं को सम्मोहन-पाश में बाँध लेता था।

श्री द्विवेदी जीविकोपार्जन हेतु अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। स्नातकोत्तर के पश्चात् उन्होंने सन १९६६ में एक-वर्ष तक आगरा कॉलेज, आगरा तदोपरांत राजा बलवंत सिंह महाविद्यालय, आगरा में हिंदी-अध्यापन कार्य किया। इसके पश्चात् वे सन १९६६ से सन १९७१ तक श्री किरोड़ी लाल जैन इंटर कॉलेज, सासनी, हाथरस में हिंदी प्रवक्ता के रूप में कार्यरत रहे। सन १९७१ में श्री किरोड़ी लाल जैन इंटर कॉलेज, सासनी से त्यागपत्र दे कर वे आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध श्री ब्रज-बिहारी डिग्री कॉलेज, कोसी कलाँ, मथुरा, उत्तर प्रदेश में हिंदी प्राध्यापक तथा अग्रिम इसी संस्थान में हिंदी विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन हुए।

कविवर श्री शंकर द्विवेदी की सर्जनात्मक धरोहर अत्यंत समृद्धशाली है। चालीस वर्षों के अपने संक्षिप्त जीवनकाल में यद्यपि उनका सर्जन-चक्र इतस्ततः बीस से पच्चीस वर्ष के अंतराल का ही रहा होगा। किन्तु अल्प काल में ही उन्होंने अनेक कालजयी काव्यों का सृजन किया है। यह समय का फेर ही कहा जाएगा कि उनका अमूल्य कृतित्व अब तक प्रकाशित न हो सका। उनके आकस्मिक निधन से उपजी परिस्थितिवश उनका कृतित्व भी समय के अनिश्चित गह्वर में छिपा रहा। मरणोपरांत संकल्प प्रकाशन, आगरा द्वारा 'अन्ततः' नामक एक गीत-संग्रह, प्रकाशित हुआ भी, जिसका विमोचन पद्म भूषण गोपालदास नीरज के कर-कमलों से हुआ परन्तु इसे भी दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि इस कृति के प्रचार-प्रसार के प्रति उचित न्याय नहीं हुआ और यह प्रकाशित हो कर भी अप्रकाशित ही रही।

श्रेष्ठ साहित्य का सर्जन दैवीय अनुकम्पा के निमित्त है। कालचक्र के फेर से अनिश्चितता के अम्बुद, ज्योतिधर का आच्छादन भले ही कर लें, किन्तु इसका अस्तित्व क्षणिक ही होता है। वे न तो उसकी ज्योतिर्मयी रश्मियों को समेट सकते हैं और न ही उसके ताप-परिताप को बाँध पाते हैं। द्विवेदी जी का सृजन-पुंज भी ऐसे ही किसी अवसर की बाट जोह रहा है। शुभस्य शीघ्रम, शनैः-शनैः भानु का प्रभास इस अनिश्चित तमिस्र को रौंदता हुआ उदित हो रहा है:

यों समय के फेर से तो भानु भी-
बादलों ने बाँह में बाँधा सही।
किन्तु यह क्यों भूलते हो, ज्योतिधर-
ताप देने में कभी हारा नहीं।। -- *(कालजयी कविता शीष कटते हैं, कभी झुकते नहीं से उद्धृत)*

''

वक्ष पर समकोणवत्, आ तो गईं हैं बाँह-
एक पग उठकर जमे, है शेष इतनी देर।
चल पड़ा, तो यात्रा करके रहेगा पूर्ण-
सारथी पश्चिम दिशा तक, रौंदता अँधेर।। -- *(कालजयी कविता विश्व-गुरु के अकिंचन शिष्यत्व पर से उद्धृत)*

''

श्री द्विवेदी राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना के अमर गायक थे। उनके काव्य व वाणी दोनों ही से ओजस्विता के स्वर का उद्घोष होता था। उनकी ओजस्वी वाणी से अभिभूत हो कर राष्ट्र कवि सोहनलाल द्विवेदी ने उन्हें **आधुनिक दिनकर** कह कर संबोधित किया था। भारत के भूतपूर्व यशस्वी प्रधानमंत्री एवं उत्कृष्ट काव्य-स्रष्टा अटल बिहारी वाजपेयी भी स्व. द्विवेदी की काव्य-प्रतिभा के अनन्यतम प्रशंसकों में से एक थे। [7] अपने अध्ययन काल से ही श्री द्विवेदी ने खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा में काव्य-छंद-गीत-गीतिकाएँ इत्यादि का सर्जन आरम्भ कर दिया था। साहित्य-सृजन में देश-काल-परिस्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न गतिविधियाँ सदैव ही सर्जकों व कवियों के ध्यानाकर्षण का केंद्र होती हैं। श्री द्विवेदी का सर्जनात्मक उत्कर्ष एक ऐसे काल का साक्षी रहा है जब भारत को अनेक युद्धों का सामना करना पड़ा। सन १९६२ में भारत-चीन युद्ध, सन १९६५ में भारत पाकिस्तान युद्ध, सन १९६७ में नाथूला दर्रे में पुनः भारत-चीन युद्ध तथा १९७१ में एक बार फिर से भारत पाकिस्तान युद्ध की विभीषिकाएँ इस देश को आंदोलित-मथित करती रहीं। एक सत्यवीर राष्ट्रपुरुष व कवि के रूप में द्विवेदी जी की राष्ट्रवादी चेतना का भी मंथन हुआ और उनके द्वारा इस काल में अनेक कालजयी रचनाओं की सृष्टि हुई।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी 1889- 15 नवंबर 1937) हिन्दी कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्ध-लेखक थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ीबोली के काव्य में न केवल कामनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के, प्रगतिशील एवं नयी कविता दोनों धाराओं के, प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि 'खड़ीबोली' हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

जयशंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ल दशमी, संवत् 1946 वि॰ तदनुसार 30 जनवरी 1890 ई॰ दिन-गुरुवार) को काशी में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी भी दान देने के साथ-साथ कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे। इनका काशी में बड़ा सम्मान था और काशी की जनता काशीनरेश के बाद 'हर हर महादेव' से बाबू देवीप्रसाद का ही स्वागत करती थी। प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा काशी में क्वींस कालेज में हुई थी, परंतु यह शिक्षा अल्पकालिक थी। छठे दर्जे में वहाँ शिक्षा आरंभ हुई थी और सातवें दर्जे तक ही वे वहाँ पढ़ पाये। उनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध घर पर ही किया गया, जहाँ हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन इन्होंने किया। प्रसाद जी के प्रारंभिक शिक्षक श्री मोहिनीलाल गुप्त थे। वे कवि थे और उनका उपनाम 'रसमय सिद्ध' था। शिक्षक के रूप में वे बहुत प्रसिद्ध थे।[7] चेतगंज के प्राचीन दलहट्टा मोहल्ले में उनकी अपनी छोटी सी बाल पाठशाला थी। 'रसमय सिद्ध' जी ने प्रसाद जी को प्रारंभिक शिक्षा दी तथा हिंदी और संस्कृत में अच्छी प्रगति करा दी। प्रसाद जी ने संस्कृत की गहन शिक्षा प्राप्त की थी। उनके निकट संपर्क में रहने वाले तीन सुधी व्यक्तियों के द्वारा तीन संस्कृत अध्यापकों के नाम मिलते हैं। डॉ॰ राजेन्द्रनारायण शर्मा के अनुसार "चेतगंज के तेलियाने की पतली गली में इटावा के एक उद्भट विद्वान रहते थे। संस्कृत-साहित्य के उस दुर्धर्ष मनीषी का नाम था - गोपाल बाबा। प्रसाद जी को संस्कृत साहित्य पढ़ाने के लिए उन्हें ही चुना गया।" विनोदशंकर व्यास के अनुसार "श्री दीनबन्धु ब्रह्मचारी उन्हें संस्कृत और उपनिषद् पढ़ाते थे।"राय कृष्णदास के अनुसार रसमय सिद्ध से शिक्षा पाने के बाद प्रसाद जी ने एक विद्वान् हरिहर महाराज से और संस्कृत पढ़ी। वे लहुराबीर मुहल्ले के आस-पास रहते थे। प्रसाद जी का संस्कृत प्रेम बढ़ता गया। उन्होंने स्वयमेव उसका बहुत अच्छा अभ्यास कर लिया था। बाद में वे स्वाध्याय से ही वैदिक संस्कृत में भी निष्णात हो गये थे।" बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत-अध्यापक महामहोपाध्याय पं॰ देवीप्रसाद शुक्ल कवि-चक्रवर्ती को प्रसाद जी का काव्यगुरु माना जाता है।

घर के वातावरण के कारण साहित्य और कला के प्रति उनमें प्रारंभ से ही रुचि थी और कहा जाता है कि नौ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने 'कलाधर' के नाम से ब्रजभाषा में एक सवैया लिखकर 'रसमय सिद्ध' को दिखाया था।[10] उन्होंने वेद, इतिहास, पुराण तथा साहित्यशास्त्र का अत्यंत गंभीर अध्ययन किया था। वे बाग-बगीचे तथा भोजन बनाने के शौकीन थे और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। वे नियमित व्यायाम करनेवाले, सात्विक खान-पान एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे।इनकी पहली कविता **'सावक पंचक'** सन 1906 में **भारतेंदु** पत्रिका में कलाधर नाम से ही प्रकाशित हुई थी। वे नियमित रूप से गीता-पाठ करते थे, परंतु वे संस्कृत में गीता के पाठ मात्र को पर्याप्त न मानकर गीता के आशय को जीवन में धारण करना आवश्यक मानते थे।प्रसाद ने कविता ब्रजभाषा में आरम्भ की थी। उपलब्ध स्रोतों के आधार पर प्रसाद जी की पहली रचना 1901 ई॰ में लिखा गया एक सवैया छंद है, लेकिन उनकी प्रथम प्रकाशित कविता दूसरी है, जिसका प्रकाशन जुलाई 1906 में 'भारतेन्दु' में हुआ था।

प्रसाद जी ने जब लिखना शुरू किया उस समय भारतेन्दुयुगीन और द्विवेदीयुगीन काव्य-परंपराओं के अलावा श्रीधर पाठक की 'नयी चाल की कविताएँ भी थीं। उनके द्वारा किये गये अनुवादों 'एकान्तवासी योगी' और 'ऊजड़ग्राम' का नवशिक्षितों और पढ़े-लिखे प्रभु वर्ग में काफी मान था। प्रसाद के 'चित्राधार' में संकलित रचनाओं में इसके प्रभाव खोजे भी गये हैं और प्रमाणित भी किये जा सकते हैं। 1909 ई॰ में 'इन्दु' में उनका कविता संग्रह 'प्रेम-पथिक' प्रकाशित हुआ था। 'प्रेम-पथिक' पहले ब्रजभाषा में प्रकाशित हुआ था। बाद में इसका परिमार्जित और परिवर्धित संस्करण खड़ी बोली में नवंबर 1914 में 'प्रेम-पथ' नाम से और उसका अवशिष्ट अंश दिसंबर 1914 में 'चमेली' शीर्षक से प्रकाशित हुआ।बाद में एकत्रित रूप से यह कविता 'प्रेम-पथिक' नाम से प्रसिद्ध हुई।

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म बागेश्वर ज़िले के कौसानी नामक ग्राम में 20 मई 1900 को हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माँ का निधन हो गया। उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। उनका नाम गोंसाई दत्त रखा गया।[2] वह एक प्रकृति प्रेमी थे। वह गंगादत्त पंत की आठवीं संतान थे। 1910 में शिक्षा प्राप्त करने गवर्नमेंट हाईस्कूल अल्मोड़ा गये। यहीं उन्होंने अपना नाम गोसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया। 1918 में मँझले भाई के साथ काशी गये और क्वींस कॉलेज में पढ़ने लगे। वहाँ से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर म्योर कालेज में पढ़ने के लिए इलाहाबाद चले गए। 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के भारतीयों से अंग्रेजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा-साहित्य का अध्ययन करने लगे। इलाहाबाद में ही उनकी काव्यचेतना का विकास हुआ। कुछ वर्षों के बाद उन्हें घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। कर्ज से जूझते हुए पिता का निधन हो गया। कर्ज चुकाने के लिए जमीन और घर भी बेचना पड़ा। इन्हीं परिस्थितियों में वह मार्क्सवाद की ओर उन्मुख हुऐ 1931 में कुँवर सुरेश सिंह के साथ कालाकांकर, प्रतापगढ़ चले गये और अनेक वर्षों तक वहीं रहे। महात्मा गाँधी के सान्निध्य में उन्हें आत्मा के प्रकाश का अनुभव हुआ। 1938 में प्रगतिशील मासिक पत्रिका 'रूपाभ' का सम्पादन किया। श्री अरविन्द आश्रम की यात्रा से आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ। 1950 से 1957 तक आकाशवाणी में परामर्शदाता रहे। 1958 में 'युगवाणी' से 'वाणी' काव्य संग्रहों की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'चिदम्बरा' प्रकाशित हुआ, जिस से में उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९६० में 'कला और बूढ़ा चाँद' काव्य संग्रह के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। १९६१ में 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित हुये। १९६४ में विशाल महाकाव्य 'लोकायतन' का प्रकाशन हुआ। कालान्तर में उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। वह जीवन-पर्यन्त रचनारत रहे। उनकी मृत्यु २८ दिसम्बर १९७७ को हुई। सात वर्ष की उम्र में, जब वे चौथी कक्षा में ही पढ़ रहे थे, उन्होंने कविता लिखना शुरु कर दिया था। १९१८ के आसपास तक वे हिंदी के नवीन धारा के प्रवर्तक कवि के रूप में पहचाने जाने लगे थे। इस दौर की उनकी कविताएं वाणी में संकलित हैं। १९१८ में उनका प्रसिद्ध काव्य संकलन 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। कुछ समय पश्चात वे अपने भाई देवीदत्त के साथ अल्मोडा आ गये। इसी दौरान वे मार्क्स व फ्रायड की विचारधारा के प्रभाव में आये। 1938 में उन्होंने 'रूपाभ' नामक प्रगतिशील मासिक पत्र निकाला। शमशेर, रघुपति सहाय आदि के साथ वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुडे रहे। वे १९५० से १९५७ तक आकाशवाणी से जुडे रहे और मुख्य-निर्माता के पद पर कार्य किया। उनकी विचारधारा योगी अरविन्द से प्रभावित भी हुई जो बाद की उनकी रचनाओं 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में देखी जा सकती है। "वाणी" तथा "पल्लव" में संकलित उनके छोटे गीत विराट व्यापक सौंदर्य तथा पवित्रता से साक्षात्कार कराते हैं। "युगांत" की रचनाओं के लेखन तक वे प्रगतिशील विचारधारा से जुडे प्रतीत होते हैं। "युगांत" से "ग्राम्या" तक उनकी काव्ययात्रा प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखर स्वरों की उद्घोषणा करती है। उनकी साहित्यिक यात्रा के तीन प्रमुख पडाव हैं – प्रथम में वे छायावादी हैं, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से प्रेरित प्रगतिवादी तथा तीसरे में अरविन्द दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी। १९०७ से १९१८ के काल को स्वयं उन्होंने अपने कवि-जीवन का प्रथम चरण माना है। इस काल की कविताएँ वाणी में संकलित हैं। सन् १९२२ में उच्छ्वास और १९२६ में पल्लव का प्रकाशन हुआ। सुमित्रानंदन पंत की कुछ अन्य काव्य कृतियाँ हैं - ग्रन्थि, गुंजन, ग्राम्या, युगांत, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, चिदंबरा, सत्यकाम आदि। उनके जीवनकाल में उनकी २८ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें कविताएं, पद्य-नाटक और निबंध शामिल हैं। पंत अपने विस्तृत वाङमय में एक विचारक, दार्शनिक और मानवतावादी के रूप में सामने आते हैं किंतु उनकी सबसे कलात्मक कविताएं 'पल्लव' में संगृहीत हैं, जो १९१८ से १९२५ तक लिखी गई ३२ कविताओं का संग्रह है। इसी संग्रह में उनकी प्रसिद्ध कविता 'परिवर्तन' सम्मिलित है। 'तारापथ' उनकी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन है। [3] उन्होंने ज्योत्स्ना नामक एक रूपक की रचना भी की है। उन्होंने ***मधुज्वाल*** नाम से उमर खय्याम की रुबाइयों के हिंदी अनुवाद का संग्रह निकाला और डॉ. हरिवंश राय बच्चन के साथ संयुक्त रूप से ***खादी के फूल*** नामक कविता संग्रह प्रकाशित करवाया। चिदम्बरा पर इन्हे १९६८ मे ज्ञानपीठ पुरस्कार से ,काला और बूढ़ा चांद पर साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९६०) से सम्मानित किया गया ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'(15 अप्रैल, 1865-16 मार्च, 1947) हिन्दी के कवि, निबन्धकार तथा सम्पादक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति के रूप में कार्य किया। वे सम्मेलन द्वारा विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किये गए थे। उन्होंने प्रिय प्रवास नामक खड़ी बोली हिंदी का पहला महाकाव्य लिखा जिसे मंगलाप्रसाद पारितोषिक से सम्मानित किया गया था।

हरिऔध जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान में हुआ। उनके पिता का नाम पंडित भोलानाथ उपाध्याय था। प्रारंभिक शिक्षा निजामाबाद एवं आजमगढ़ में हुई। पांच वर्ष की अवस्था में इनके चाचा ने इन्हें फारसी पढ़ाना शुरू कर दिया था।

निजामाबाद से मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात हरिऔध जी काशी के क्वींस कालेज में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए गए, किन्तु स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें कॉलेज छोड़ना पड़ा। उन्होंने घर पर ही रह कर संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया और १८८४ में निजामाबाद में इनका विवाह निर्मला कुमारी के साथ सम्पन्न हुआ।

सन १८८९ में हरिऔध जी को सरकारी नौकरी मिल गई। वे कानूनगो हो गए। इस पद से सन १९३२ में अवकाश ग्रहण करने के बाद हरिऔध जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अवैतनिक शिक्षक के रूप से कई वर्षों तक अध्यापन कार्य किया। सन १९४१ तक वे इसी पद पर कार्य करते रहे। उसके बाद यह निजामाबाद वापस चले आए। इस अध्यापन कार्य से मुक्त होने के बाद हरिऔध जी अपने गाँव में रह कर ही साहित्य-सेवा कार्य करते रहे। अपनी साहित्य-सेवा के कारण हरिऔध जी ने काफी ख़्याति अर्जित की। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें एक बार सम्मेलन का सभापति बनाया और विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किया। सन् १९४७ ई० में निजामाबाद में इनका देहावसान हो गया।

रचनाएँ

उन्होंने ने ठेठ हिंदी का ठाठ , अधखिला फूल , 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' आदि ग्रंथों की भी रचना की, किन्तु मूलतः वे कवि ही थे। उनके उल्लेखनीय ग्रंथों में शामिल हैं:

प्रिय प्रवास - इसका रचनाकाल 1914 ई० है। इसमें श्रीकृष्ण के बाल्यकाल से लेकर मथुरा गमन तक की घटनाओं को वर्णित किया गया है। इसमें 17 सर्ग हैं। यह हरिऔध जी का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह हिंदी खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसे मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इसका प्रारंभिक शीर्षक 'ब्रजांगना विलाप' था। यह एक प्रबंध काव्य है। इसे हिन्दी साहित्य की अन्य रचनाओं में "मील का पत्थर" कहा जाता है।

1. कवि सम्राट

2. वैदेही वनवास - इसका रचनाकाल १९४० ई० है। इसमें कुल १८ सर्ग हैं। यह एक प्रबंध काव्य है। इसके अब तक 4 संस्करण निकल चुके हैं। यह खड़ी बोली में रचित है। यह रामकथा पर आधारित है जब श्रीराम के द्वारा सीता को निर्वासित किया गया था। इसमें करुण रस का प्रयोग किया गया है। इसमें आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है।

3. **पारिजात** - इसका रचनाकाल १९३७ई० है। यह १५ सर्गों में बंटा है। इसमें विविध विषयों की कविताएं संकलित की गई हैं। यह एक महाकाव्य है। इसका प्रारंभिक शीर्षक स्वर्गीय संगीत था।

4. रस-कलश (१९४० ई .)
5. चुभते चौपदे (१९३२ ई.)
6. चोखे चौपदे (१९२४ ई .)
7. ठेठ हिंदी का ठाठ
8. अधखिला फूल
9; रुक्मिणी परिणय
10. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास

हरिऔध जी ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविता की है, किंतु उनकी अधिकांश रचनाएँ खड़ी बोली में ही हैं। हरिऔध की भाषा प्रौढ़, प्रांजल और आकर्षक है। कहीं-कहीं उसमें उर्दू-फारसी के भी शब्द आ गए हैं। नवीन और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का तो इतनी अधिकता है कि कहीं -कहीं उनकी कविता हिंदी की न होकर संस्कृत की सी ही प्रतीत होने लगती है। राधा का रूप-वर्णन करते समय:

रूपोद्याम प्रफुल्ल प्रायः कलिका राकेंदु-बिंबानना,
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसि का क्रीड़ा-कला पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य लीलामयी,
श्री राधा-मृदु भाषिणा मृगदगी-माधुर्य की मूर्ति थी।

भाषा पर हरिऔध जी का अद्भुत अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ उन्होंने संस्कृत-गर्भित उच्च साहित्यिक भाषा में कविता लिखी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने सरल तथा मुहावरेदार व्यावहारिक भाषा को भी सफलतापूर्वक अपनाया। उनके चौपदों की भाषा इसी प्रकार की है। एक उदाहरण लीजिए:

नहीं मिलते आँखों वाले, पड़ा अंधेरे से है पाला।
कलेजा किसने कब थामा, देख छिलते दिल का छाला।।

जगन्नाथदास रत्नाकर

जगन्नाथदास रत्नाकर (१८६६ - २१ जून १९३२) आधुनिक युग के श्रेष्ठ ब्रजभाषा कवि थे।

इनका जन्म सं. १९२३ (सन् १८६६ई.) के भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन हुआ था। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की भी यही जन्मतिथि थी और वे रत्नाकर जी से 16 वर्ष बड़े थे। उनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास और पितामह का नाम संगमलाल अग्रवाल था जो काशी के धनीमानी व्यक्ति थे। रत्नाकर जी की प्रारंभिक शिक्षा फारसी में हुई। उसके पश्चात् इन्होंने 12 वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी पढ़ना प्रारंभ किया और यह प्रतिभाशाली विद्यार्थी सिद्ध हुए। सन १८८८ ई. में इन्होंने करना चाहा था, पर पारिवारिक परिस्थितिवश न कर पाए। ये पहले 'ज़की' उपमान से फारसी में रचना करते थे। इनके हिंदी काव्यगुरु सरदार कवि थे। ये मथुरा के प्रसिद्ध कवि 'नवनीत' चतुर्वेदी से भी बड़े प्रभावित हुए थे।

रत्नाकर जी ने अपनी आजीविका के हेतु ३०-३२ वर्ष की अवस्था में जरदेजी का काम आरंभ किया था। उसके उपरांत ये आबागढ़ रियासत में कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए। भारतेंदु जी के संपर्क और काशी की कविगोष्ठियों के प्रभाव से इन्होंने १८८९ ई. में ब्रजभाषा में रचना करना आरंभ किया। रत्नाकर जी की सर्वप्रथम काव्यकृति 'हिंडोला' सन् 1894 ई. में प्रकाशित हुई। सन् १८९३ में 'साहित्य सुधा निधि' नामक मासिक पत्र का संपादन प्रारंभ किया तथा अनेक ग्रंथों का संपादन भी किया जिनमें दूलह कवि कृत कंठाभरण, कृपारामकृत 'हिततरंगिणी', चंद्रशेखरकृत 'नखशिख' हैं। नागरीप्रचारिणी सभा के कार्यों में रत्नाकर जी का पूरा सहयोग रहता था। सन् १८९७ में रत्नाकर जी ने 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर' प्रकाशित कराया और १८९८ में 'समालोचनादर्श' (पोप के 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म' का अनुवाद) प्रकाशित हुआ।

सन् १९०२ के उपरांत ये अयोध्यानरेश राजा प्रतापनारायण सिंह के यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरी (निजी सचिव) के रूप में काम करते रहे और अंतिम समय तक इनका संबंध अयोध्या दरबार से रहा। इस बीच इन्होंने 'बिहारी रत्नाकर' नाम से बिहारी सतसई का संपादन किया। १४ मई सन् १९२१ ई. से अयोध्या की महारानी की प्रेरणा से इन्होंने 'गंगावतरण' काव्य की रचना प्रारंभ की, जो सन् १९२३ में समाप्त हुई। इसी समय 'उद्धवशतक' का भी रचनाकार्य चलता रहा। हरिद्वार यात्रा में एक बार इनकी पेटी खो गई जिससे 'उद्धव शतक' के सौ सवा सौ छंद चोरी चले गए। पर रत्नाकर जी ने अपनी स्मृति से उन्हें फिर लिख डाला। 'उद्धव शतक' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। ये सन् १९२६ में औरियंटल कांफरेंस के हिंदी विभाग के सभापति हुए और सन् १९३० में हिंदी साहित्य सम्मेलन के बीसवें अधिवेशन के सभापति चुने गए। इस अधिवेशन का सभापतित्व इन्होंने राजसी ठाटबाट के साथ किया। सन् १९३२ ई. की २१ जून को इनका अचानक स्वर्गवास हो गया।

रत्नाकर जी केवल कवि ही नहीं थे, वरन् वे अनेक भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी) के ज्ञाता तथा विद्वान् भी थे। उनकी कविप्रतिभा जैसी आश्चर्यकारी थी, वैसी ही किसी छंद की व्याख्या करने की क्षमता भी विलक्षण थी। अनेक विद्वानों ने रत्नाकर जी की टीकाओं की प्रशंसा की है।

रत्नाकर जी का ब्रजभाषा पर अद्‌भुत अधिकार था और उनकी प्रसिद्ध ब्रजभाषा रचनाओं में सुंदर प्रयोगों एवं ठेठ शब्दावली का व्यवहार हुआ है। रत्नाकर जी स्वच्छ कल्पना के कवि हैं। उसके द्वारा प्रस्तुत दृश्यावली सदैव अनुभूति सनी है और संवेदना को जाग्रत करनेवाली है।

रचनाएँ

पद्य

हरिश्चंद्र (खंडकाव्य) [गंगावतरण १९२३ (पुराख्यान काव्य), उद्धवशतक (प्रबंध काव्य), हिंडोला १८९४ (मुक्तक), कलकाशी (मुक्तक) समालोचनादर्श (पद्यनिबंध) श्रृंगारलहरी, गंगालहरी, विष्णुलहरी (मुक्तक), रत्नाष्टक (मुक्तक), [2] वीराष्टक (मुक्तक), प्रकीर्णक पद्यावली (मुक्तक संग्रह) ।

गद्य

(क) साहित्यिक लेख - रोला छंद के लक्षण, महाकवि बिहारीलाल की जीवनी, बिहारी सतसई संबंधी साहित्य, साहित्यिक ब्रजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री, बिहारी सतसई की टीकाएँ, बिहारी पर स्फुट लेख।

(ख) ऐतिहासिक लेख - महाराज शिवाजी का एक नया पत्र, शुगवंश का एक शिलालेख, एक ऐतिहासिक पापाणाश्व की प्राप्ति, एक प्राचीन मूर्ति, समुद्रगुप्त का पाषाणाश्व, घनाक्षरी निय रत्नाकर, वर्ण, सवैया, छंद आदि।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

शिवमंगल सिंह'सुमन' (१९१५ -२००२) एक प्रसिद्ध हिंदी कवि और शिक्षाविद थे। उनकी मृत्यु के बाद, भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री ने कहा, "डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' केवल हिंदी कविता के क्षेत्र में एक शक्तिशाली चिह्न ही नहीं थे, बल्कि वह अपने समय की सामूहिक चेतना के संरक्षक भी थे। उन्होंने न केवल अपनी भावनाओं का दर्द व्यक्त किया, बल्कि युग के मुद्दों पर भी निर्भीक रचनात्मक टिप्पणी भी की थी।"[1]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म ५ अगस्त १९१५ को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के झगरपुर में हुआ था। वे रीवा, ग्वालियर आदि स्थानों मे रहकर आरम्भिक शिक्षा प्राप्त की है | एक अग्रणी हिंदी लेखक और कवि थे। उन्होंने एक एम ए और पी एच.डी. अर्जित किया। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी में उन्हें 1950 में डी. लिट. के साथ भी सम्मानित किया गया।

सुमन ने १९६८-७८ के दौरान विक्रम विश्वविद्यालय (उज्जैन) के कुलपति के रूप में काम किया; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ के उपराज्यपाल ; १९५६-६१ के दौरान प्रेस और सांस्कृतिक अटैच, भारतीय दूतावास, काठमांडू (नेपाल); और १९७७-७८के दौरान अध्यक्ष, भारतीय विश्वविद्यालय संघ (नई दिल्ली) रहे। वह कालिदास अकादमी, उज्जैन के कार्यकारी अध्यक्ष थे। २७ नवंबर २००२ को दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया।

कविता संग्रह

- हिल्लोल -(१९३९)
- जीवन के गान -(१९४२)
- युग का मोल -(१९४६)
- प्रलय सृजन -(१९५०)
- विश्वास बढ़ता ही गया -(१९४८)
- विध्य हिमालय -(१९६०)
- मिट्टी की बारात -(१९७२)
- वाणी की व्यथा -(१९८०)
- कटे अँगूठों की वंदनवारें -(१९९१)

उल्लेखनीय कविताएँ

- **का हिसाब.....**
- चलना हमारा काम है.....
- मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार.....
- असमंजस.....**सांसों**
- पतवार.....
- सूनी साँझ.....
- विवशता.....
- मैं बढ़ा ही जा रहा हूँ.....
- आभार.....

पर आँखें नहीं भरीं.....

- मृत्तिका दीप.....
- जल रहे हैं दीप, जलती है जवानी..... / भाग १
- जल रहे हैं दीप, जलती है जवानी..... / भाग २
- जल रहे हैं दीप, जलती है जवानी..... / भाग ३
- बात की बात.....
- हम पंछी उन्मुक्त गगन के.....
- वरदान माँगूँगा नहीं.....
- तूफानों की ओर घुमा दो नाविक.....
- मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला.....
- सहमते स्वर-1.....
- सहमते स्वर-2.....
- सहमते स्वर-3.....
- सहमते स्वर-4.....
- सहमते स्वर-5.....
- अंगारे और धुआँ.....
- मैं अकेला और पानी बरसता है.....
- चल रही उसकी कुदाली.....
- मिट्टी की महिमा.....
- रणभेरी...

मोहन राणा

मोहन राणा का जन्म १९६४ में दिल्ली में हुआ। वे ब्रिटेन में बसे भारतीय मूल के हिंदी कवि हैं और बाथ (इंग्लैंड की समरसेट काउंटी में एक रोमन शहर) में निवासी हैं। उनकी कविताओं में जीवन के सूक्ष्म अनुभव महसूस किये जा सकते हैं। बाज़ार संस्कृति की शक्तियों के विरुद्ध उनकी सोच भी कविता में उभरकर सामने आती है।[1] उनकी कविताएँ स्थितियों पर तात्कालिक प्रतिक्रिया मात्र नहीं होती हैं। वे पहले अपने भीतर के कवि और कविता के विषय में एक तटस्थ दूरी पैदा कर लेते हैं। फिर होता है सशक्त भावनाओं का नैसर्गिक विस्फोट। उनकी कविता पढ़कर महसूस होता है कि जैसे वे सच की एक निरंतर खोज यात्रा कर रहे हों।[1][2]

कवि-आलोचक नंदकिशोर आचार्य के अनुसार - हिंदी कविता की नई पीढ़ी में मोहन राणा की कविता अपने उल्लेखनीय वैशिष्ट्य के कारण अलग से पहचानी जाती रही है, क्योंकि उसे किसी खाते में खतियाना संभव नहीं लगता। यह कविता यदि किसी विचारात्मक खाँचे में नहीं अँटती तो इसका यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि मोहन राणा की कविता विचार से परहेज करती है – बल्कि वह यह जानती है कि कविता में विचार करने और कविता के विचार करने में क्या फर्क है। मोहन राणा के लिए काव्य रचना की प्रक्रिया अपने में एक स्वायत्त विचार प्रक्रिया भी है।

मोहन राणा की चुनी हुई कविताओं के संग्रह ***'मुखौटे में दो चेहरे'*** पर कवि आलोचक गोबिन्द प्रसाद ने लिखा, "मोहन राणा की कविता पढ़ते समय यह अहसास सर उठाने लगता है कि इन कविताओं का आस्वाद वैसा कुछ नहीं है जैसे हम हिन्दी की कविताओं में पढ़ते चलते आए हैं। संरचना, शिल्प-संरचना और भाषिक विन्यास में भी ये कविताएँ बहुत कुछ अलग-सी जान पड़ती हैं। ऐसा लगता है इन कविताओं में 'लिरिकल एलिमेंट' का जो पारम्परिक रचाव होता है उसमें निहित अनुभव को एक नये स्थापत्य में ढाल दिया गया है। इस स्थापत्य में बिम्ब को रिप्लेस करके स्मृति और समय के बारीक तारों को छेड़कर एक ऐसा नगमा गूँजता हुआ मालूम होता है जो अपनी स्वप्निलता में एक अगोरत्व को बुनता रहता है। समय की क्रूरता, समाज-संस्थाओं का बिखरता ताना-बाना और व्यापती जा रही अमानुषता और असंवेदनशीलता का सामना करने अथवा रेखांकित करने का कवि का अपना तरीका है।"

कविता संग्रह

'जगह' (१९९४), जयश्री प्रकाशन

'जैसे जनम कोई दरवाजा' (१९९७), सारांश प्रकाशन

'सुबह की डाक' (२००२), वाणी प्रकाशन

'इस छोर पर' (२००३), वाणी प्रकाशन[4]

'पत्थर हो जाएगी नदी' (२००७), सूर्यास्त

'धूप के अँधेरे में' (२००८), सूर्यास्त

'रेत का पुल' (२०१२), अंतिका प्रकाशन

'शेष अनेक' (२०१६), कॉपर कॉइन पब्लिशिंग प्रा. लि.

'मुखौटे में दो चेहरे (२०२२), नयन पब्लिकेशन

'एकांत में रोशनदान' (२०२३), नयन पब्लिकेशन

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास (११ अगस्त १५११ - १६२३) मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के महान रामभक्त इव कवि थे। उन्होने रामचरितमानस और हनुमान चालीसा जैसे विश्व प्रसिद्ध ग्रंथो की रचना की है। इन्हें आदिकाव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है।

श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। ब्रजावधी में रचित श्रीरामचरितमानस लोकग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद ब्रजभाषा में रचित विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के १०० सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में ४६वाँ स्थान दिया गया। तुलसीदास जी रामानंद संप्रदाय के अनुयायी थे।[2]

रामचरितमानस की रचना

संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में यह अद्भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रातःकाल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया- सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने "सत्यं शिवं सुन्दरम्" की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा समान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी। इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को देखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी-

आनन्दकानने ह्यास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।

कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है-"काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।"

पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया।

गीतावली, कृष्ण-गीतावली, रामचरितमानस, पार्वती-मंगल, विनय-पत्रिका, जानकी-मंगल, रामललानहछू, दोहावली, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञा-प्रश्न, सतसई, बरवै रामायण, कवितावली, हनुमानबाहुक

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' (23 सितम्बर १९०८- २४ अप्रैल १९७४) हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं। राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता को इनके काव्य की मूल-भूमि मानते हुए इन्हे 'युग-चारण' व 'काल के चारण' की संज्ञा दी गई है।

'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गये। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओं में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी कुरुक्षेत्र और उर्वशी नामक कृतियों में मिलता है।

'दिनकर' जी का जन्म २४ सितंबर १९०८ को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में **भूमिहार** ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास राजनीति विज्ञान में बीए किया। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक विद्यालय में अध्यापक हो गये। १९३४ से १९४७ तक बिहार सरकार की सेवा में सब-रजिस्टार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। १९५० से १९५२ तक लंगट सिंह कालेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर 1963 से 1965 के बीच कार्य किया और उसके बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार बने।

उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। उनकी पुस्तक *संस्कृति के चार अध्याय* [4] के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा *उर्वशी* के लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। अपनी लेखनी के माध्यम से वह सदा अमर रहेंगे।

द्वापर युग की ऐतिहासिक घटना महाभारत पर आधारित उनके प्रबन्ध काव्य कुरुक्षेत्र को विश्व के १०० सर्वश्रेष्ठ काव्यों में ७४वाँ स्थान दिया गया।[5]

१९४७ में देश स्वाधीन हुआ और वह बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रध्यापक व विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचे। १९५२ में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ, तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और वह दिल्ली आ गए। दिनकर १२ वर्ष तक संसद-सदस्य रहे, बाद में उन्हें सन १९६४ से १९६५ ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। लेकिन अगले ही वर्ष भारत सरकार ने उन्हें १९६५ से १९७१ ई. तक अपना हिन्दी सलाहकार नियुक्त किया और वह फिर दिल्ली लौट आए। फिर तो ज्वार उमरा और रेणुका, हुंकार, रसवंती और द्वंद्वगीत रचे गए। रेणुका और हुंकार की कुछ रचनाऐं यहाँ-वहाँ प्रकाश में आईं और अग्रेज प्रशासकों को समझते देर न लगी कि वे एक ग़लत आदमी को अपने तंत्र का अंग बना बैठे हैं और दिनकर की फ़ाइल तैयार होने लगी, बात-बात पर क़ैफ़ियत तलब होती और चेतावनियाँ मिला करतीं। चार वर्ष में बाईस बार उनका तबादला किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर स्वभाव से सौम्य और मृदुभाषी थे, लेकिन जब बात देश के हित-अहित की आती थी तो वह बेबाक टिप्पणी करने से कतराते नहीं थे। रामधारी सिंह दिनकर ने ये तीन पंक्तियाँ पंडित जवाहरलाल नेहरू के विरुद्ध संसद में सुनायी थी, जिससे देश में भूचाल मच गया था। दिलचस्प बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के तौर पर दिनकर का चुनाव पणृडित नेहरु ने ही किया था, इसके बावजूद नेहरू की नीतियों का विरोध करने से वे नहीं चूके।

देखने में देवता सदृश्य लगता है
बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो
समझो उसी ने हमें मारा है॥

1962 में चीन से हार के बाद संसद में दिनकर ने इस कविता का पाठ किया जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुक गया था. यह घटना आज भी भारतीय राजनीति के इतिहास की चुनिंदा क्रांतिकारी घटनाओं में से एक है.

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहां जाने दे उनको स्वर्गधीर
फिरा दे हमें गांडीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर॥

रचनाओं के कुछ अंश

किस भांति उठूँ इतना ऊपर?
मस्तक कैसे छू पाउँ मैं?
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते,
उँगलियाँ न छू सकती ललाट
वामन की पूजा किस प्रकार,
पहुँचे तुम तक मानव विराट?
रे रोक युधिष्ठर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर --

(हिमालय से)

अटल बिहारी वाजपेयी

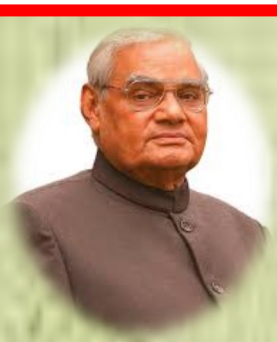

अटल बिहारी वाजपेयी (२५ दिसम्बर १९२४ – १६ अगस्त २०१८) भारत के दसवें प्रधानमन्त्री थे। उन्होंने प्रधानमंत्री का पद तीन बार संभाला है, वे पहले 13 दिन के लिए १६ मई १९९६ से १ जून १९९६ तक। फिर लगातार २ साशन; ८ महीने के लिए १९ मार्च १९९८ से १३ अक्टूबर १९९९ और फिर वापस १३ अक्टूबर २२ मई २००४ तक भारत के प्रधानमन्त्री रहे।वे हिन्दी कवि, पत्रकार व एक प्रखर वक्ता थे। वे भारतीय जनसंघ के संस्थापकों में एक थे, और 1968 से 1973 तक उसके अध्यक्ष भी रहे। उन्होंने लम्बे समय तक राष्ट्रधर्म, पाञ्चजन्य (पत्र) और वीर अर्जुन आदि राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया।

वह चार दशकों से भारतीय संसद के सदस्य थे, लोकसभा, निचले सदन, दस बार, और दो बार राज्य सभा, ऊपरी सदन में चुने गए थे। उन्होंने लखनऊ के लिए संसद सदस्य के रूप में कार्य किया, २००९ तक उत्तर प्रदेश जब स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ताओं के कारण सक्रिय राजनीति से सेवानिवृत्त हुए। अपना जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के रूप में आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प लेकर प्रारम्भ करने वाले वाजपेयी राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन (राजग) सरकार के पहले प्रधानमन्त्री थे, जिन्होंने गैर काँग्रेसी प्रधानमन्त्री पद के ५ वर्ष बिना किसी समस्या के पूरे किए। आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प लेने के कारण इन्हे भीष्मपितामह भी कहा जाता है। उन्होंने २४ दलों के गठबन्धन से सरकार बनाई थी जिसमें ८१ मन्त्री थे।

२००५ से वे राजनीति से संन्यास ले चुके थे और नई दिल्ली में ६-ए कृष्णामेनन मार्ग स्थित सरकारी आवास में रहते थे । १६ अगस्त २०१९ को लम्बी बीमारी के बाद अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली में श्री वाजपेयी का निधन हो गया। वे जीवन भर भारतीय राजनीति में सक्रिय रहे।

श्री वाजपेयी प्रधानमन्त्री पद पर पहुँचने वाले मध्यप्रदेश के प्रथम व्यक्ति थे।

कवि के रूप में

अटल बिहारी वाजपेयी राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ एक कवि भी थे। मेरी इक्यावन कविताएँ अटल जी का प्रसिद्ध काव्यसंग्रह है। वाजपेयी जी को काव्य रचनाशीलता एवं रसास्वाद के गुण विरासत में मिले हैं। उनके पिता **कृष्ण बिहारी वाजपेयी** ग्वालियर रियासत में अपने समय के जाने-माने कवि थे। वे ब्रजभाषा और खड़ी बोली में काव्य रचना करते थे। पारिवारिक वातावरण साहित्यिक एवं काव्यमय होने के कारण उनकी रगों में काव्य रक्त-रस अनवरत घूमता रहा है। उनकी सर्व प्रथम कविता **ताजमहल** थी। इसमें शृंगार रस के प्रेम प्रसून न चढ़ाकर "एक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल, हम गरीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मजाक" की तरह उनका भी ध्यान ताजमहल के कारीगरों के शोषण पर ही गया। वास्तव में कोई भी कवि हृदय कभी कविता से वंचित नहीं रह सकता।

अटल जी ने किशोर वय में ही एक अद्भुत कविता लिखी थी - "हिन्दू तन-मन हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय", जिससे यह पता चलता है कि बचपन से ही उनका रुझान देश हित की तरफ था।

राजनीति के साथ-साथ समष्टि एवं राष्ट्र के प्रति उनकी वैयक्तिक संवेदनशीलता आद्योपान्त प्रकट होती ही रही है। उनके संघर्षमय जीवन, परिवर्तनशील परिस्थितियाँ, राष्ट्रव्यापी आन्दोलन, जेल-जीवन आदि अनेक आयामों के प्रभाव एवं अनुभूति ने काव्य में सदैव ही अभिव्यक्ति पायी। विख्यात गज़ल गायक जगजीत सिंह ने अटल जी की चुनिन्दा कविताओं को संगीतबद्ध करके एक एल्बम भी निकाला था।

प्रमुख प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं :

- **रग-रग हिन्दू मेरा परिचय**
- **मृत्यु या हत्या**
- **अमर बलिदान (लोक सभा में अटल जी के वक्तव्यों का संग्रह)**
- **कैदी कविराय की कुण्डलियाँ**
- **संसद में तीन दशक**
- **अमर आग है**
- **कुछ लेख: कुछ भाषण**
- **सेक्युलर वाद**
- **राजनीति की रपटीली राहें**
- **बिन्दु बिन्दु विचार, इत्यादि।**
- **मेरी इक्यावन कविताएँ**